द्वितीय अध्याय

कुसुम अन्सल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. बचपन
2. घरेलू वातावरण
3. शिक्षा - दीक्षा
4. वैवाहिक जीवन
5. धार्मिक संस्कार
6. नाट्य् अभिनेत्री
7. साहित्य सृजन
8. विदेश यात्रा
9. कुसुम अंसल का व्यक्तित्व
10. कुसुम अंसल का कृतित्व

× कवयित्री कुसुम अन्सल

× कहानीकार कुसुम अन्सल

× कुसुम अन्सल का समग्र कृतित्व

निष्कर्ष

अध्याय : 2

कुसुम अंसल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1· बचपन

कुसुम अंसलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में 1 अगस्त 1940 में हुआ। उनका बचपन बहुत ही साधारण था। बचपन में माँ की मृत्यु होने के कारण बुआ ने उसे गोद ले लिया था। उसके बचपन में कुछ भी उल्लेखनीय घटित नहीं हुआ परंतु उनके बचपन उनके लोकोप्रिय व्यक्तित्व का नींव का पत्थर ठहरा।

कुसुमजी को बचपन बरसात जैसा लगता था। अल्लड, बहता हुआ स्वच्छ था उनका बचपन। बरसाती दिनों में वह खुद को रोक नहीं पाती थी। बादल के घुमडते ही वह दौडती हुई अंगन में जाती और भरपूर नहाती कभी छत से बहते परनाले की तेज धार के नीचे खडी होकर पानी की तीव्र धारा को अपनी पीठ पर झेलती। ओले गिरते तो उन्हें फ्राक के अंचल में भरती और चबा-चबाकर खाती थी। बचपन में उन्हें बार-बार लगता कि उनमें और स्कूल की अन्य लड़कियों में कुछ फर्क है। बचपन में उसे अपने परिवेश में एक उलझाव सताता था। उसे लगता था कि "सब लड़कियों की एक माँ है और मेरी तीन, सब लड़कियों के एक पापा हैं पर मेरे दो।"[1] बालसुलभ भोलापन यहाँ कितना यथार्थ लगता है। पिताजी द्वारा की गयी दूसरी शादी ने बचपन में ही उसे बुआजी के घर जाकर रहना पडा। एक उलझन के साथ दूसरी उलझन जुड रही थी। बचपन में ही छोटे मस्तिष्क पर अनुभवों की पर्ते जमती जा रही थी। कोमल बचपन के नन्हें पलों के बड़े अनुभवों को सहेजकर रखने का सलीका भी उन्हें पता नहीं था। नये वातावरण में अनजाने नौकर, दूर के रिश्तेदारों की फुसफुसाहट से उनका बालसुलभ बचपन तंतुजाल में उलझता

जा रहा था और वह अदृश्य डर से सहम रही थी। चुप्पी लगाकर रहती। परछाइयों से भी भय लगता रहता। बुआजी की उस विशालकाय हवेली में कुसुमजी पूरी सहमी एक अकेले कोने में चुपचाप खड़ी रह जाती।

बचपन में बाबाजी द्वारा किया गया मंत्रपाठ, उज्ज्वल भविष्य की और आत्मबल की बाबाजी के सान्निध्य में की गयी प्रार्थना, बाबाजी के साथ वाले ज्ञानी, ध्यानी, संत आदि के कारण धार्मिक संस्कार मन पर बचपन से हावी हुए हैं। इन धार्मिक संस्कारों ने बचपन में अनेक प्रश्न कुसुमजी के मन में खडे कर दिये थे। "धर्म कोई स्वर फुसफुसाता जीवन जीने का एक सलीका, एक रास्ता जिस पर तुम्हें चलता है···ये कौनसा रास्ता है···स्कूल के रास्ते जैसा है या क्या···?"[2]

कुसुमजी का बचपन मास्टरजी की मार, बाबाजी का दुलार और घर की चहारदीवारी के भीतर बीत रहा था। उसे बहुत कम बार बाहर जाना पडता। वैसे अलीगढ में उसी समय कुछ अधिक नहीं रहा करता था। बाबाजी के कठिन अनुशासन में बचपन बीतता रहा। साधू आश्रम से होके आने पर बाबाजी का अनुशासन और कडा हो जाता। । कपड़े, जूते साधारण हो जाते। खाना साधारण हो जाता। बालों की चोटी गुँथने की आज्ञा होती। शीशा देखना वर्जित हो जाता था। असंल कहती है, "हवेलीनुमा घर के उस बडे परिवेश में मैं "छोटी मैं" दिन पर दिन छोटी कर दी जाती थी।"[3]

इतनी कठोर अनुशासित दिनचर्या में कभी-कभी हम लोग सिनेमा जाते। बचपन में देखे हुए सिनेमा पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई अंसलजी कहती हैं, बचपन में देखे उन सिनेमा को मैं आज भी उंगलियों पर गिन सकती हूँ। "रामराज्य", "भक्त ध्रुव", "राम-विवाह" आदि। जनवरी महिने में लगी नुमाईश हमें जीवित रखती है। बचपन में हर दिन "सर्कस", "मौत का कुआँ", "हंसी का फ्वारा", देखने को मिलता। इन्हीं दिनों हमें चाट, हलवा, पराठा खाने को मिलता। ये सारी मनोरंजन की दुकाने आज भी मौजूद हैं। हर वर्ष नुमाईश में "यमपुरी नाटक" लगा करता था जो मन पर गहरा प्रभाव छोडता। इससे किये के अनुसार फल-प्राप्ति

होती है, इसकी सीख हमें बचपन में मिली थी। नुमाईश के दिनों सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होते।

बचपन में प्रतिभावंतों से संबंध

बचपन के दिनों नुमाईश के साथ-साथ कई दिनों के सांस्कृतिक प्रोग्राम भी हुआ करते थे। कवि-सम्मेलन, मुशायरा, नृत्य, नाटिकाएँ आदि। असंलजी के पापा को इन कार्यक्रमों में विशेष रूचि रहती। वे ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन में विशेष रूचि लेते। उन दिनों सभी बड़े-बड़े कवि, लेखक, शायर, संगीत तज्ज्ञ कुसुमजी के घर पर ही ठहरते। उनके परिवार के सब सदस्य इन कार्यक्रमों में शरीक होते। यहीं उनके संस्कार का नन्हासा अंकुर पनप रहा था।

दस साल की उम्र में कुसुमजी बुआ और फूफाजी के साथ आगरे चली गई। अब पूरी तरह वे ही उनके माता-पिता थे। एक समझेदारी टूट रही थी। एक घर बदल रहा था। पहचान बदल रही थी। आगरे में एक छोटा-सा घर मिला। जिसमें कुसुमजी के लिए एक कमरा मिला। वह "पुरी साहब" की इकलौती बेटी थी। पुरी साहब याने पापा उससे बहुत प्यार करते थे। आगरे के इस घर में अधिक सुविधाएँ नहीं थी। पापा ने बचपन से कुसुमजी के मन में इच्छा शक्ति जगाने का काम किया था। वे कुसुमजी से पढ़ाई की बातें करते थे। कोई अन्य काम करने नहीं देते। वे कहते, "नहीं तुम सबके लिए नहीं बनी हो, तुम्हें तो बस पढ़ना है। अगर मैं रसोई में माँ का हाथ बटाती तो कहते, तुम सब्जी नहीं काटोंगी, तुम औरों जैसी नहीं हो, तुम्हें तो कविता पढ़नी है।"[4]

2· **घरेलू वातावरण**

कुसुम अंसलजी के घर का वातावरण नियंत्रण भरा था। पत्ता गिरता तो भी सलीके से। "साकेत" के एक कमरे में एक बड़ी-सी तसबीर थी। नौकरों और दाइयों से पता चला था कि ये मेरी माँ की तसबीर है। जब कुसुमजी दस महीने की थी तब माँ गुजर गयी थी। उसके भाई या वह तस्वीर के सामने खड़े देख लिया

जाते तो हमें पास से गुजरने वाला डाँटकर कहता, "भागो यहाँ से क्यों खड़े हो यहाँ····नौकर समझाते हुए कहता···तुम्हारी नई माँ अगर तुम्हें यहाँ देख लेगी तो खूब पीटाई होगी, उनके सामने इस तस्वीर के निकट मत खड़े होना।"[5] और वह तस्वीर, वह कमरा कुसुमजी और उनके दो भाइयों के लिए वर्जना का स्थल बना। कुसुमजी के पिताजी ने दूसरी शादी की थी। शादी के बाद कुसुमजी को उन्होंने कुसुमजी की बुआ के घर भेजा था। उन्हें उनकी बुआजी ने बेऔलाद होने के कारण गोद लिया था।

बुआजी और बाबाजी के सान्निध्य में कुसुमजी को कई धार्मिक संस्कार भी हुए। उदारता के दर्शन भी हुए। बुआजी और बाबाजी के घर "साकेत" में कई रिश्तेदार आकर रहा करते। बड़े परिवार में कई नौकर-चाकर रहा करते। परिवार का खाना महाराज बनाते थे। रसोई में चप्पल या जूता पहनकर जाना मना था। खाना घडी देखकर नियत समय पर लगाया जाता था। खाना सादा होता। पहली शिफ्ट में सब बच्चे बाबाजी के साथ खाते। खाना परोसने का काम घर की स्त्रियाँ करती थी। घर में गाय-भैसों के होने के कारण सुबह ताजा मक्खन टोस्टों पर लगाकर दिया जाता। लस्सी या छाछ घर के सदस्यों के पीने के लिए निकालकर नौकरों में बाँट दी जाते। दही बिलोते समय नौकर छोटे बर्तन लेकर रसोई के बाहर कतार में खडे रहते एक उदारता भरे विशाल माहौल में कुसुमजी के दिन बीते।

आगरे में आने पर घर में अधिक सुविधाएँ नहीं थी। मोटर, गाडियाँ, बग्गी आदि कुछ भी नहीं था। कुसुम अपने माँ के साथ रिक्षा में या पैदल या बस से स्कूल जाया करती थी। इन्हीं दिनों कुसुमजी के मन में अलगाव पनप रहा था।

बेऔलाद अम्माजी की गोद से एक बेटी का जन्म होने पर उसके पिताजी ने उसे अलिगढ़ लाया। कुसुमजी का घर फिर एक बार बदल गया। कुसुमजी के दोनों भाई लंदन चले गये थे। सबसे छोटा भाई मेयो कालेज, अजमेर में पढता था। भाई-बहन पढ़ाई के वास्ते बिखर गये थे।

कुसुमजी के पास खुबसूरत-सी पोशाकें नहीं थी। घर में मम्मी को अपने सौन्दर्य पर गर्व था। मम्मी उन्हें अपने साथ बाहर नहीं ले जाती। वह कहती,"तुम नहीं जाओगी हमारे साथ, तुम्हें ले जाने में शर्म आती है हमें।"[6] इससे कुसुमजी सिकुडती रहती। पिताजी के पास हमारे लिए समय नहीं रहता। उनकी व्यस्तता के कारण महिनों-महिनों उनसे वार्तालाप नहीं हुआ करता। कालेज ट्रिप को जाने यूथ फेस्टिवल में भाग लेने को प्रतिबन्ध लगवाया जाता था। इससे कुसुमजी मनमसोस कर रह जाती। उन्हें अपने सपनों की चिन्ता थी। इस पारिवारिक स्थिति में सपने चिथडे बन जाते थे। उसका अपनापन छोटा बन गया था।

छोटी-सी उम्र से उसे अपने परिवार के साथ कभी एक कारागार से दूसरे कारागार में ठूँस दिये जाते। "साकेत" के बन्द परिवेश में कुसुमजी के मन में उभरे सवाल कमरों की ठहरी हुई हवाओं में लटककर रह जाते। एक भुतहा सन्नाटा फैल जाता।

विवाह के पश्चात सम्मिलित परिवार, सुशील के भाई-बहनों के प्रति, माताजी-पिताजी के प्रति कर्तव्य भावना, घर के काम में हरदम जुटते रहना, छोटे-छोटे बच्चों के भरण-पोषण, उनके संस्कार, शिक्षा-दीक्षा के प्रति सतर्क रहना, पति की व्यस्तता में कोई खलल न डालना, बेटे-बेटियाँ बड़े होने पर उनके विवाह को सम्पन्न कराना, उनकी सुस्थितियों में चैन की साँस लेना, बच्चों की संगति की शिक्षा-दीक्षा देते समय घर के पूरे वातावरण में संगीतात्मकता के दर्शन होना, बेटियों के विवाह के बाद घर खाली-खाली लगना, बेटे-बेटियों की बिदाई पर शून्य की स्थिति में चले जाना, रिक्तता या संत्रास में डूब जाना, घर की रिक्तता को भरने के लिए नया टाईपरायटर लाना, शोध की पांडुलिपि घर में ही टाईप करना, एक मानसिकता से दूसरी मानसिकता में जाकर जीवन यापन करना, पीडादायी लमहों में पुस्तकों की सहायता लेना आदि सारी बातें कुसुमजी के घर की स्थिति और गति पर प्रकाश डालती है। कुसुमजी का मातृत्व, पत्नीत्व, परिवार के लिए दायित्व आदि का परिचय इस माहौल के साथ-साथ हमें होता है। घर से वह पूर्ण रूप

में जुड गयी है।

3· शिक्षा-दीक्षा

"साकेत" में सम्पन्नता होने पर भी कुसुमजी के परिवेश में कुछ भी बड़ा या विशाल नहीं था। मोटर गाडियाँ, घोडागाडी के होते हुए भी उसे अकेले पैदल स्कूल जाना पडता था। स्कूल दूर नहीं था पर उस बडे गेट से निकलता कुसुमजी का अपनापन सिकुडकर और छोटा हो जाता था और सडक के किनारें चुपचाप चलता बेहद अकेला होता जाता था।

स्कूल के अलावा घर पर एक मास्टरजी पढ़ाने आते थे। कुसुमजी उनके दोनों बड़े भाई विनोद, प्रमोद, बुआजी के बेटे दीपक आदि सभी को मास्टर एक साथ पढ़ाते थे। बाग के एक कोने में दरी बिछाकर पढाई शुरू होती थी। क्लास के लिए सारी तैयारियाँ नौकर-चाकरों के होते हुए भी इन सभी भाई-बहन को करनी पडती थी।

सुबह उठकर कुसुमजी और उनके दो भाई तथा बुआजी के बेटे को यज्ञशाला तक पहुँचना पडता। वहाँ बाबाजी मधुर स्वर में मंत्र पठन करते और ये बच्चे भी आँखें मूँदकर उसे दोहरा देते। ये सब भजन गाते। उज्ज्वल भविष्य तथा मानसिक बल देने की प्रभु से प्रार्थना करते।

जिस समय मास्टरजी आते, बाबाजी वरांडे में आराम कुर्सी पर बैठकर किताब या अखबार पढ़ते। मास्टरजी के कठोर शासन में पढ़ाई करनी पडती। गलती करने पर मास्टरजी की पिटाई का शिकार होना पडता। मास्टर पीटते-पीटते कहते, "हरामजादे···अमीरजादे···नालायक कहीं के। अमीरों के बच्चे पढते हैं क्या कभी जो तुम पढोंगे।"[7] बाबाजी ये बातें सुनकर भी अनसुना करा देते। बाबाजी रात के समय हमारी पिटाई पर मरहम लगाते, गरम पानी की बोतलें देते परंतु मास्टरजी को मारने से मना नहीं कर देते। परिणाम यह हुआ कि कुसुमजी और उनके दो भाई तथा बुआजी का बेटा अच्छे अंक प्राप्त करके पास हुए। बड़ा भैय्या हरबार विश्वविद्यालय में टाप पर रहा। खेलों में भी अग्रणी रहा।

पढ़ाई उन सभी की एक नियति रही। स्कूली जीवन से कविताएँ लिखने का चसका लगा। वह स्कूल में अच्छी छात्रा मानी जाती थी। खेलों नाटकों में शरीक होती थी। उन्हें आगरा कालेज के दिनों में "उपेन्द्रनाथ अश्क" द्वारा लिखित नाटक "अंजोदीदी" में श्रेष्ठ अभिनय के लिए पुरस्कार भी मिला था। कालेज के कवि सम्मेलनों में कभी भाग नहीं लिया था। आगरे से कुसुमजी ने "इंटर सायन्स" किया। प्रीमेडिकल की परीक्षा में बैठने की पूरी तैयारी भी की थी उसने, परंतु पिताजी को यह पसन्द नहीं था। वे कहते, "मेरी बेटी क्या मिडवाइफ बनेगी, दाई लोगों के बच्चे जनवायेगी, नहीं, कभी नहीं।"[8] और इसी से कुसुमजी के कैरियर पर पानी फिर गया। परिणाम स्वरूप उन्हें हिन्दी और अंग्रेजी विषय लेकर बी·ए·करना पड़ा।

कुसुमजी को कालेज सूती साडी पहनकर और रबड की जूती पहनकर जाना पडता था। भाई के लंदन से आने पर उसे नये कपडे और चप्पले खरीद दी। इससे उनका "स्व" जागृत हुआ था। आत्मसम्मान जग उठा था। आत्मसम्मान को जगाने के लिए वह दिन-रात पढ़ाई में रत रहती।

पुस्तकों से प्रेम

अंसलजी को स्कूली दिनों से पुस्तकों से प्रेम होता गया था। खूब सारे नये-पुराने उपन्यास पढ़ती रही। कविताएँ पढ़ती रही। अलीगढ़ के कवि सम्मेलनों में बड़े-बड़े कवियों को सुनती। इन दिनों उन्होंने बच्चनजी की "मधुशाला", भवानीप्रसाद मिश्र की "मैं गीत बेचता हूँ", नीरज की "कारवां", सोम ठाकुर की "लौट आओ", "मांग के सिंदूर की सौगंध" आदि कविताएँ सुनी थी। यह सब उन्हें उत्सव जैसा लगता था। कविताएँ सुनने के बाद वह कई दिनों तक रोमांचित रहती। पूरी रात वह मौयक्की सी बिस्तरे पर बैठी रहती। उन्हीं दिनों उन्होंने सुरैय्या और भारत भूषण की "मिर्जा गालिब" देखी, पूरी फिल्म कुसुमजी के भीतर पूरी उतर गई थी। उसकी एक-एक गज़ल कुसुमजी के शरीर के रोएं-रोएं में समा गई। कविताएँ लिखने का जुनून उस पर सवार हुआ कि वह अपने भाइयों को पत्र भी कविता में लिखती थी।

कुसुमजी ने अलीगढ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम्·ए· की उपाधि हासिल की है। भविष्य उसके हाथ में नहीं था। सन 1962 में एम्·ए· की उपाधि लेने के बाद श्री सुशील अंसल से उनका विवाह सम्पन्न हुआ। उनके दो बेटियाँ और एक बेटा है। ईश्वर की कृपा से सब विवाहित हैं। उन्हीं दिनों विश्वविद्यालय में पढ़ने का माहौल अच्छा था। पंद्रह-बीस लड़के और आठ-दस लडकियाँ एम्·ए· में पढ़ते। कुछ वर्ष पहले उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच्·डी·किया। उनके शोध-प्रबंध का विषय था "समकालीन उपन्यासों में महानगरीय बोध"।

कालेज के दिनों में असंलजी कविता, कहानियाँ लिखती, छुपा-छुपाकर एक उपन्यास भी लिख रही थी। युनिव्हर्सिटी की क्लासें, लेक्चर, पढ़ाई में वह खुद की मुक्ति पाती थी। उन पलों को वह संजीदगी से जी रही थी। बारिश में जब अन्य छात्राएँ क्लास में नहीं आती, तब कुसुमजी अपनी गाड़ी में सभी लडकियों को बिठलाकर, उनके घर से या होस्टेल से लेती हुई कालेज जाती। सवारी बुलाने की आपाधापी में कुसुमजी स्वयं गीली होती। क्लास के सभी लडकों से सभी लडकियों की मित्रता थी। एक परिवार की तरह सब बर्ताव करते। कुसुमजी की अधिकतर सहेलियाँ मुसलमान थी। वह उम्र के साथ रोजे रखती, ईद के दिन सेवइयाँ खाती, कालेज के दिनों वह एक छात्र से आकर्षित भी हो गयी थी परंतु परिवार की मर्यादाओं का डर उसका पीछा नहीं छोडता था। एम्·ए· की पढ़ाई पूरी हो रही थी। जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग समाप्त होता जा रहा था, जिससे वह प्रेम करती थी वह प्रतिकूल परिस्थिति में से गुजर रहा था। उसने उसे अपनी मित्र की सहायता से एक दिन पाँच सौ रूपये माँगे थे और कुसुमजी ने उस रकम को पहुँचा भी दी थी।

वह मनोविज्ञान सम्बन्धि प्रैक्टिकल करती, सेमीनार में जाती, लायब्ररी में जाकर नोटस् निकालती, उसका मन पूरी तरह पढ़ाई में डूब गया है। इस स्थिति में उनके घर में उनके विवाह की तैयारी शुरू की गयी थी। कुसुमजी विवाह योग्य हो गयी थी।

विवाह के उपरान्त कुसुमजी ने अहमदाबाद की एक संगोष्ठी में "नयी क्रांति आज के परिवेश में" एक शोध-निबंध पढ़ा। इस संगोष्ठी के अध्यक्ष महीपसिंह थे। इस निबंध की बहुत सराहना हुई और पीएच्·डी·करने का विचार मन में आया और कुसुमजी शोध-कार्य संभावनाओं के प्रति सजग हो उठी। शोध-कार्य की रजिस्ट्री करते समय वह एम्·ए·मनोविज्ञान की होने के कारण कई कठिनाइयाँ आयी परंतु अंत में चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में पीएच्·डी·के लिए उनका नाम रजिस्टर हो गया। यश गुलाटीजी उनके गाईड नियुक्त हो गये। शोध-कार्य के लिए यशजी के साथ महीपसिंह ने भी उनकी सहायता की थी।

बेटियों के विवाह के उपरान्त एक माँ की उदासीनता, घर की रिक्तता को भरने के लिए कुसुमजी ने एक टाईपरायटर घर लाकर खुद के शोध-प्रबंध की पांडुलिपि खुद टाईप की। चंडीगढ जाकर यश गुलाटी को शोध-कार्य समर्पित किया। शोध-यात्रा के मुकाम पर भी वह सफलता के साथ पहुँची थी। उसके शोध-कार्य की काफी प्रशंसा हुई और उन्हें पीएच्·डी·की उपाधि कुसुम पुरी नाम से मिली थी जो नाम उनके माता-पिताजी के अस्तित्व की केवल निशानी रही है।

4· वैवाहिक जीवन

कुसुमजी के घर में उनके विवाह की चर्चाएँ शुरू हुई थी। वह विवाह योग्य बन गयी थी। उसका रूप साधारण-सा होने के कारण माता-पिताजी को उनके लिए अच्छे वर का जुगाड करने में शर्म आया करती थी। उनका व्यक्तित्व जैसे एक दृष्टा का व्यक्तित्व हो गया था। उनका व्यक्तित्व अपमान से कुचला जा रहा था।

सुशील ने अपनी बहनों के साथ आकर कुसुमजी को देखा। बात पक्की हो गयी बधाइयों के साथ-साथ सगाई की तैयारियाँ शुरू हुई। कुसुमजी को आश्चर्य लगा कि, "क्या देखा सुशील ने उसमें ? रूप उसमें था नहीं, आधुनिक सजधज और ग्लैमर से वह अपरिचित थी। वार्तालाप उन दोनों के बीच उगा नहीं, तो फिर क्या था जो स्वीकार लिया गया।"[9] कुसुमजी ने तो विवाह नहीं चाहा था।

सगाई की रस्म दिल्ली में पूरी हो गयी। पापा, सुशील को तिलक लगा आये थे। उन दिनों सगाई की अंगूठी पहनने का रिवाज नहीं था। अतः सुशील की मँगेतर हो जाने पर भी कुसुमजी की उंगलियाँ सूनी थी। एक अनजान व्यक्ति से जुड जाने का डर उसे लग रहा था। अलीगढ में परम्परागत पद्धति से धुमधाम से विवाह सुशील के साथ सम्पन्न हुआ। इतना धूमधाम के साथ विवाह शायद अलीगढ़ के इतिहास में पहला ही होगा।

सुशील एक मध्यवर्गीय बेहद साधारण परिस्थिति का था। विवाह के उपरान्त कुसुमजी ने उसका घर देखा तो एक बेहद साधारण था उसका घर। सज्जाविहीन एक कमरा कुसुमजी को किसी आकर्षण में नहीं बाँध सका परंतु कुसुमजी ने उसे उदास नहीं होने दिया। उसने इस कमरे को सजाने का निश्चय किया। दिन-रात जूटकर घर सँवारने लगी। अनुभवों का नया संसार परत-दर-परत खुलता रहा था। इस स्थिति में उसने स्वाती नक्षत्र के अवसर पर गिरने वाली बूँद का अनुकरण करना चाहा। पूरे दिन मेहनत उठाती, मीठे पकवान बनाती रहती। वह एक ऐसे घर में आ पडी थी जहाँ अभाव की अधिकता थी। यहाँ "कल्परत्न डिफरेन्स" उसे महससू होने लगा। अलीगढ़ में पुस्तकों को ज्ञान की अभिव्यक्ति का दर्जा दिया जाता था। "साकेत" में हर तरह की पुस्तकें पत्रिकाएँ रहती परंतु सुशील के घर में पुस्तकें तराजू के मोल से बिकती थी। इसका उसे दुख हुआ। सुशील का घर तीन कमरों का था जहाँ न कोई लॉन था, न फूल, न क्यारियाँ, न वरांडा, न छज्जा।" कुसुमजी इन सारे अभावों और सूनेपन के बावजूद भी अपने को इस नये माहौल में रममान करने लगी थी। सुशील के घर के लोग कट्टर पंथी थे। अलीगढ़ से उनकी सहेलियाँ आने पर उन्हें जो भोजन या चायपान कर पाया। उसके बर्तन राख से मांग कर शुद्ध कर दिए। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कुसुमजी की सास कहती है - "शुद्ध कर रहे हैं बर्तन, मलेच्छों को खाना खिला दिया तुमने····अशुद्ध हो गया सबकुछ।"[10] इसे सुनकर कुसुमजी हतप्रभ हो गयी। यह स्थिति उन्होंने पहली बार अनुभव की थी। अलीगढ़ में मनुष्य और मनुष्य का विभाजन प्रेम और घृणा का विभाजन, हिंदू-मुसलमान का भेदभाव उसने नहीं देखा था।

इस परिवार की कट्टरता और असंतुलित परिस्थितियों से गुजरते-गुजरते कुसुमजी ने "अर्चना" नामक एक बच्ची को जन्म दिया। कुसुम माँ बनी। इन्हीं दिनों उनके पति सुशील चंडीगढ़ में हवाई-अड्डे का निर्माण कर रहे थे। कुसुम अकेली थी। उसके पति सुशील संयमी और व्यवहारिक थे। वे प्रेम को गंभीरता से लेते थे। बाहरी प्रदर्शन में विश्वास नहीं रखते। एक मध्यवर्गीय रूढ़िवादी और परम्परावादी परिवार के संकुचित जीवन में कुसुमजी ने खुद को ढाला था। इससे उसके मन में एक घुटन पैदा होती जा रही थी। उनका दाम्पत्य जीवन एक घिसे हुए रास्ते से गुजर रहा था, जो उन्हें अमान्य था। पति सुशील चाहते कि कुसुम आम स्थितियों की तरह खुश रहे, बदल जाये। सुशील पर व्यवसाय का बोझ होने कारण वे कुसुमजी से दूर रहा करते थे। वे अपनी कंपनी को ऊँचाई पर ले जाना चाहते थे। वे ध्रुव तारे की भाँति तटस्थ थे। अपने स्थान पर अटल रहते हुए भी ध्रुवतारे की भाँति दिशा-दिग्दर्शन करते थे। वे अपने व्यवसाय के प्रति पूरी तरह से समर्पित थे। इस स्थिति से कुसुम उन्हें डिगाना नहीं चाहती थी। सुशील पर अपने अस्वस्थ पिताजी की तथा दो छोटी बहनों, दो भाइयों की जिम्मेदारी थी। सुशील का पूरा जीवन एक तपस्या था। सुबह दोनों सुबह से शाम तक जी तोडकर मेहनत करते। पति बाहर का कुसुमजी घर का। आर्थिकता की दृष्टि से परिवार अधिक सम्पन्न नहीं था। कुछ कामों में घाटा भी हो रहा था। सुशील पूरे परिवार की धूरी था। इस स्थिति में कुसुमजी ने उसकी पूरी सहायता की। छुट्टियों में भी कभी घुमने जाने का मौका नहीं आता। इतवार भी काम में बीत जाता। कोई खुला दिन, मुक्त आकाश उनके दाम्पत्य जीवन में हाथ नहीं आता। वे कुसुमजी को अधिक सुख-सुविधाएँ प्रदान नहीं कर सकते। थोडा-सा प्रेम, थोडी-सी सुविधाएँ, थोडे से साथ व्यतीत किये पल। बस यही था दाम्पत्य जीवन। परिवार में भीड थी। इस भीड भरे परिवार में उनका एक छोटासा कमरा था जिसके दरवाजे पर घुटन चाहे जब प्रवेश कर सकती थी। जब भी कुछ घटित होता सुशील उन्हें घर से चले जाने को कहते। थोडा-थोडा संघर्ष पैदा होता परन्तु विद्रोह तथा विस्फोट पैदा नहीं हुआ। कुसुमजी सब सहती रहती। अपनी वास्तविकता को तलाशती रहती।

12948

विवाह के उपरान्त आडोस-पडोस के व्यक्तियों जैसा उनका जीवन नहीं रहा। पड़ोस की महिलाएँ महिनों-महिनों मसूरी, नैनीताल, कश्मीर या विदेशी यात्राओं पर जाती। कुसुमजी के भाई-भाभियाँ, माता-पिता, देश-विदेश घुमते रहते परन्तु कुसुमजी का जीवन एक संघर्ष था, जहाँ दिन-रात उसे जूझना पडता था। ये दिन उन्हें काटों से भरा घना जंगल लग रहा था। इससे वह डिप्रेशन की स्थिति में पहुँचती। इस स्थिति में वह घर से निकलकर लोदी गार्डन की हरियाली पर दो-दो घण्टे समाधिस्थ होकर बैठती। इस स्थिति का वर्णन करती हुई कुसुमजी कहती है, "मेरे लिए प्रकृति वह मानसिक उपकरण थी जिसके साथ मैंने जन्म लिया था और जो मेरे बचपन की सहेली जैसी थी।"[11] इसी प्रकृति की पृष्ठभूमि पर बैठकर वह अपने अस्तित्व की तलाश करती रहती। अपने कर्तव्य में जी-जान से जूटी रहती। उसका अकेलापन बढ़ता जा रहा था। भीड़ में या पार्टियों में कतराने लगती। इन्हीं दिनों भारत-पाक युद्ध के कारण और भी तनाव बढ़ता जा रहा था।

इस तनाव पूर्ण स्थिति में सुशील का निमंत्रण पाकर कुसुमजी बच्चों सहित गोरखपुर गयी। फर्टिलाइजर की कोलोनी के एक नवनिर्मित मकाम में सुशील के साथ रहने लगी। सुशील व्यस्तता में भी पूरा खाली समय कुसुमजी को देते।फर्टिलाइजर फ्क्टिरी के जनरल मैनेजर नागराजन, मिसेस सचदेव, कपूर साहब, उनकी पत्नी राशी आदि के साथ शिकार, बैडमिंटन खेलना घुमना-फिरना शुरू हुआ। खुशियाँ जुटाने लगी। गोरखपुर में अंसलजी ने संसार की विविधताओं से परिचय किया। नये अनुभव जुटाती रही। अब कुसुमजी की पूरी गृहस्थी स्थिर एवं सफल बन चुकी है। उनके पति सुशील बड़े बिल्डर हैं। वे अत्यन्त सीधी रहन-सहन के तटस्थ व्यक्तित्व के हैं। वर्तमान समय में उनके तीनों बच्चे उनसे अलग-अलग हो रहे हैं। अर्चना, अल्पना की गृहस्थियाँ सुस्थिर बन चुकी है।

आज कुसुमजी का वैवाहिक जीवन पूर्ण रूप में साकार हुआ है। वह एक कर्तव्यदक्ष पत्नी, कर्तव्यदक्ष माता, कर्तव्यदक्ष बहू के रूप में सफलता प्राप्त कर चुकी है।

5. धार्मिक संस्कार

बाबाजी के कारण बचपन से कुसुमजी पर धार्मिक संस्कार हुए। बाबाजी बडे सुबह उठते भजन, पूजाअर्चा करते। यज्ञशाला में जाकर होमहवन करते। कुसुमजी भी बड़े सबेरे उठकर वहाँ पहुँचती, बाबाजी के साथ मंत्रोच्चारण करती, उज्ज्वल भविष्य, मानसिक बल की भगवान से प्रार्थना करती। गुरू प्रवचन सुनती। धर्म की संकल्पना पर सोचती।

अलीगढ़ के पास वाले एक छोटे से गाव में स्थित "साधू आश्रम" में बाबाजी और बुआजी के साथ जाती, यह स्थान बाबाजी का तीर्थ था। एक गुरूकुल था। वहाँ मुट्ठी भर छात्र सफेद या पीले वस्त्र पहनकर घुटे हुए चिकने शरीर से ज्ञानगृहन किया करते थे। कुसुमजी को यह दृश्य कौतुहल पूर्ण लगता था। ये छात्र ब्रह्मचारी बनकर ज्ञानग्रहण का काम करते हैं।

कुसुमजी को बार-बार यहाँ आना पडता था। कभी-कभी यहाँ दो-तीन दिनों का शिबीर भी लगता। बुआजी के साथ कुसुम यहाँ आकर रहती। सीधा खाना खाकर धर्म गुरूओं के उद्देश्य, भजन, कीर्तन सुनती। बाबाजी कहते, "चरित्रोत्थान के लिए यहाँ आना आवश्यक है।"[12] घर के वातावरण ने अंसलजी को धार्मिकता की ओर मुडाया। उनका तादात्म्य स्वामी ध्रुवानंद से होने लगा। वह उनके निकट बैठने लगी। मन के बेचैनी की आवाज सुनने के लिए कोई न होने के कारण वह धार्मिकता की ओर मुडी थी। उसमें लघुता का एहसास हो रहा था। वह अपने अस्तित्व से कतराने लगी थी। परिणाम स्वरूप उसकी रूचि हवन-संध्या में बढ़ गयी। ध्यान व्रत वह करने लगी। स्वामीजी के वार्तालाप से जीवन-दर्शन उसे समझने लगा।

कुसुमजी गोरखपुर से दिल्ली आयी और वहाँ नयी जिन्दगी शुरू हुई। वहाँ उन्होंने अपने तीसरे आपत्य "प्रणव" को जन्म दिया। कुसुमजी अर्चना, अल्पना और प्रणव के साथ अपना समय गुजारती। तीनों बच्चे छोटे थे। उनका लालन-पालन ठीक ढंग से करती थी। अपने पति के हर सुख-दुख से तदाकार रहती। पति के

धनभाव में उन्होंने साधारण जीवन जीया। अपनी आवश्यकताओं को मर्यादित रखा वह मौन के भीतर जीना सीख रही थी।

बीच-बीच में "इंटीरियर डैकोरेशन" जैसे कोर्स भी कर लेती। सुशील बहुमंजिल इमारतें दिल्ली में बना रहे थे। तपस्या का फल मिल रहा था। "आकाश दीप", "आशा-दीप", "सूर्यकिरण", "अंसल भवन" तैय्यार हो रहे थे। घर के बाहर प्रगति हो रही थी, परंतु घर में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा था। वह बच्चों पर पूजा-पाठ के संस्कार करती। शाम को बच्चों को प्रार्थना की मुद्रा में बिठलाकर भजन गवाती। खेल-कुद में वह सब संस्कार बच्चों पर आरोपित करने का प्रयास करती थी। कभी-कभी उदासी भरे दिनों में महिनों आरती संध्या नहीं करती, न दीपक जलाती। समृद्धता धीरे-धीरे आ रही थी। सुशील का मंजिले बनाने का व्यवसाय विस्तृत रूप धारण कर रहा था। इस घीसी-पीटी लीक पर चलने वाली कुसुम को रेणू के आगमन ने नयी जिन्दगी प्रदान कर दी। उसे नाटक के लिए अनुबद्ध कर दी गयी। उन्होंने हरिद्वार, ऋषिकेश, गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनाथ, अमरनाथ आदि अनेक तीर्थयात्राएँ भी परिवार समेत की हैं।

गोरखपुर में अपने पति के साथ रहते समय उनके अनेक पंजाबी परिवारों से जुडाव हुआ। उन्हें वहीं "माता के जागरण" में जाने का अवसर मिला। कुसुमजी के आर्य समाजी मन के लिए यह एक नया अनुभव था। पंडाल के बीचोंबीच रखी "दुर्गा माता" की प्रतिमा ने उसे प्रभावित किया परन्तु इस समय गाये जानेवाले भजन से वह काफी नाराज हुई। वहाँ की अप्राकृतिक स्थितियों ने उसे नाराज किया।

अलीगढ, आगरा, दिल्ली, बम्बई, गोरखपुर आदि शहरों के साथ कुसुमजी की जीवन यात्रा जुड़ गयी है।

6· <u>नाट्य-अभिनेत्री</u>

दिल्ली में घुटन भरी जिंदगी में से गुजरते-गुजरते एक दिन रेणू आकर कुसुमजी को उठा ले गयी, "इष्टा" के परिवेश में। इसके पहले कुसुमजी खुद को

साधारण तीन बच्चों की माँ मानती थी। नाटक के दृश्य में वह कैसे काम कर सकेगी? ऐसी उसकी धारणा थी। नाटक के लिए कुसुमजी को अनुबद्ध किया गया। "एक ताजी शीत बयार घुटन भरे कमरे में जैसे अचानक घुस आयी थी।"[13] कुसुमजी को "गालिब कौन है" नाटक में भूमिका मिली। सभी कलाकारों ने उन्हें प्रोत्साहन देकर अपना लिया और कुसुमजी उत्साह से अभिनय में जुड गयी। काफी व्यस्त रहने लगी। उसमें बदलाव की स्थितियाँ आयी। रिहर्सल में व्यस्त रहा करती। रंगमंच के वातावरण से उसे गहरा जुडाव हुआ। वह अपनी भूमिका के साथ तन्मय हुआ करती थी।यह नाटक काफी सफल रहा। एक साल तक निरन्तर यह नाटक चलता रहा। रिश्तेदारों से टीका-टिप्पणियाँ होने लगी, वे सुशील से कहते, "तुम्हें क्या जरूरत थी बीबी से ड्रामे करवाने की, दो कौडी का कोई आदमी उसके कंधे पर हाथ रखकर इश्क फरमाता है तो तुम्हारा खून नहीं खोलता।"[14] इस पर सुशील की क्या प्रतिक्रिया रहती पता नहीं। कुसुमजी के सास-ससुरजी ने भी कुछ दिन बात नहीं की। एक दिन सास ने पंजाबी में कहा, "इन्नी खलकत दे सामने तू पराये मदद दा हत्थ फडिया, पिंआर दीओ गल्ला कीतिआं···तैनू शरम नहीं आई···मैं ता हैरान हां तेरे ते···इन्ना चुप्प ऐसे करके रहिंदी है?"[15]

कुसुमजी सास को समझाती हुई कहती है - "यह मात्र नाटक है, एक अभिनय, आपके बेटे ने मुझे सब कुछ दिया है,उसके आगे किसी आदमी से मुझे कुछ नहीं चाहिए। अपनी मर्यादा मैं जानती हूँ···मैं सिर्फ नाटक कर रही हूँ, कोई सौदा नहीं जिसमें इन्सान बदल जाए।"[16] सासजी का विरोध बढ़ता गया। वह जी चाहे उसे कुछ अच्छी बुरी सुनाती। सलमान के साथ जो एक उर्दू के अखबार में पत्रकार था, उसके साथ उन्होंने भूमिका की थी वह उससे दस साल छोटा था। इन्हीं दिनों उन्होंने उपन्यास भी लिखना शुरू किया। उसका व्यक्तित्व रूपी दीपक आकार लेते जा रहा था। सलमान ने उसे कुछ लिखने और लिखी हुई सामग्री को छपवाने के लिए प्रोत्साहन दिया, जिससे लिखने की चेतना वह पा सकी।

7· साहित्य सृजन

सलमान की प्रेरणा से लिखने की प्रेरणा उसमें पनपने लगी। छुपाछुपा कर अपना पहला उपन्यास लिखने में वह जुट गई। कभी दिन में, कभी रात में, कभी आधी रात को बिस्तरे से उठकर वह लिखती। सुशील उनके इस रूप को देखकर पता नहीं क्या सोचते ? कहते कुछ नहीं थे। इस नवअर्जित शौक ने उन्हें एक नया रास्ता सुझाया। पुस्तकें जमा होने लगी। वह पढ़ाई में मशगूल रहने लगी। इस अवस्था का वर्णन करते हुए कुसुमजी कहती हैं - "मुझे एक आधार चाहिए था, कोई एक आधार जो मेरा संबल बन जाए, मेरे भीतर की रचनात्मकता की अभिव्यक्ति बन जाए, मुझे संभाल ले, मेरे व्यक्तित्व में एक ठहराव ले आये। इस पलों में मेरी अनुभवजन्य विविधता मुझे एक दृष्टिकोण पकडा रही थी। जिसे प्रयोग में लाकर मैं आराम से अपनी समचित्तता में समाधिस्थ लिख रही थी।"[17] काफी परिश्रम के बाद उनका पहला उपन्यास "अंतीत के आंचल में" पूरा हुआ। परन्तु मार्ग प्रदर्शित करने वाला छोटा शायर पता नही कहां गायब हुआ और कुसुमजी के उपन्यासों की पांडुलिपी अलमारी में पडी रही परन्तु अंत में सुशील की सहायता से स्टार पब्लिकेशन के प्रकाशक की सहायता से पहला उपन्यास प्रकाशित हुआ, 15 अप्रैल 1975 में। प्रकाशक अमरनाथजी ने "अतीत के आंचल" उपन्यास का नाम बदलकर "उदास आँखें" कर दिया था। पुस्तक की पहली प्रति उन्होंने अपने पापा को समर्पित की थी, परन्तु परिवार वालों से इस नवनिर्मित सृजनशीलता पर कोई उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया नहीं मिली। "उदास आँखें" बिना किसी हलचल के मुँह छिपाये पडी रही, परन्तु इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी उन्होंने लेखिका बनने का प्रबल सपना देखा था। वह सोचती, "इच्छाएँ छोड दो, इस संसार में कोई किसी को कुछ नहीं देता, बिंदु भर सुख भी नहीं···तलाशना है तो अपने "स्व" में ही सुख को तलाश ने का प्रयास करो।"[18] "उदास आँखें" के अनेक पाठकों ने अच्छी-अच्छी प्रतिक्रियाएँ लिखी जिससे उनका हौसला बढ़ता गया।

कुसुम अन्सलजी ने छोटी उम्र में ही कहानियाँ, कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था। एम्·ए·की शिक्षा-दीक्षा के दौरान उन्होंने तीन लघु उपन्यास लिखे

थे। उनमें से दो "नींव का पत्थर" और "उदास आँखें" के नाम से छपे गये।

उन्होंने अपनी यात्रा-वृत्तान्तों पर एक पुस्तक छपी है। उनके यात्रा वर्णन समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में छपे जाते हैं। 16 से 31 अक्तुबर के धर्मयुग में पाकिस्तान पर एक लेख छपा है। अपने लेखन कार्य के बारे में अन्सलजी लिखती है - "मेरा लेखन जीवन के मनोवैज्ञानिक तत्व को अधिक उभरता है। मैं चरित्रों के माध्यम से जीवन के विभिन्न पक्षों को देखती हूँ। जीवन की उलझनों का हल खोजती हूँ और प्रयत्नरत हूँ कि लेखन के सहारे जीवन के उस समय को खोल लूं जो हमारी वास्तविकता है।"[19]

सलमान के प्रयास से उनकी सभी कविताओं का संकल्प "मौन के दो पल" छपा गया जिस पर देवेन्द्र सत्यार्थी ने भूमिका लिखी। लेखकीय संसार में सुस्थापित होने के लिए उन्होंने किसी का सहारा नहीं लिया था। वह कहानियाँ, कविताएँ निरन्तर लिखने लगी। इसी धून में "नींव का पत्थर" उपन्यास छपा गया। साहित्यिक खेमों की राजनीति के कारण उन्हें अधिक न्याय नहीं मिला। कुसुमजी साहित्य सम्मेलनों के जन से में शरीक होने लगी। महिला वर्ष के समय सन 1975 में सरोदवादक शरणरानी, अभिनेत्री नरगिस, नृत्यांगना इंद्राणी रहमान, आंबिदा, जाकिर हुसेन, प्रमिला कपूर आदि से परिचय बढ़ता गया। "स्मारिका" का समूचा काम कुसुमजी ने किया। साहित्य सृजन के बहाने घर से बाहर जाने का मौका मिलने लगा जहाँ कुछ नयी रचनात्मक उर्जा की प्राप्ति होती। इन दिनों उनकी तस्वीरें समाचार पत्रों में छपी गयी, कभी अभिनेत्री नर्गिस के साथ, तो कभी भाषण देते हुए। इससे घर के लोग प्रसन्न थे। वह "कामायनी" नाम से संगोष्ठी का आयोजन करने लगी। लेखकों को आमंत्रित करने लगी। इसी से उनका परिचय लेखक वर्ग से बढ़ा।

इन दिनों उनकी कहानियाँ और कविताएँ "सारिका", "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", "धर्मयुग", "संचेतना" आदि में छपती रही। आलोचकों के तीखे बाण और सराहना

की मंद बयार में से उसका साहित्य गुजर रहा था। अपनी साहित्य सृजन की साधना पर सोचते हुए कुसुमजी लिखती है - "मेरा लेखन तो मेरा एक स्वप्न था, विराट स्वप्न जिसमें मैं सशरीर चल ही नहीं रही थी, पूरा का पूरा रम गई थी।"[20]

आगे चलकर कुसुमजी का "उसकी पंचवटी" छापा गया जिसकी काफी सराहना हुई। अंग्रेजी और पंजाबी में उसका अनुवाद भी हुआ। कुसुमजी की लेखकीय यात्रा का यह उपन्यास पहला मील का पत्थर ठहरा।

अनेक समीक्षकों ने उन पर टिका-टिप्पणियाँ भी की परन्तु अपने लेखन की ईमानदारी पर उसे पूरा विश्वास था इसलिए वह हतोत्साह नहीं हुई। उनकी यह साहित्य-यात्रा आज भी जारी है।

लेखिका ने अनेक प्रकाशकों की, आलोचकों की, लेखकों की गुटबाजी की पोल खोलने का प्रयत्न किया है। लेखकों के इन खेमों से जो बाहर रहता है, उसे अधिक मान्यता प्राप्त नहीं होती। इस पर भी प्रकाश डाला है। घर परिवार की पूरी जिम्मेदारियाँ निभाते-निभाते वह लिखती हैं। .....- "मेरा उस गृहस्थी के प्रति कर्तव्य शोष था, उसे पूर्ण रूपेन चलाने का परन्तु होता यह था कि घर के कोने मुझे अवकाश का कोई पल नहीं देते थे। उस लिफता के मध्य मेरे लिए कुछ भी लिखना एक चैलेंज या चुनौती बन जाता था और उस चुनौती को मैं अपने भीतर हँसकर स्वीकार करती थी।"[21] लिखना उनमें एक बेचैनी बन निर्माण करता था। सदा-सर्वदा लेखन के बारे में सोच उनके मन में तैरता रहता। रात्री-बेरात्री उठकर वह लिखती। कभी-कभी पारिवारिक दिक्कतें उन्हें महिनों-महिनों लेखन से दूर रखती। कुसुमजी ने अपने कर्तव्य से कभी भी मुँह नहीं मोडा। सारी जिम्मेदारियाँ निभाते-निभाते लिखती। परिवार के सदस्यों ने इस काम में उसे अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया था। साहित्य यात्रा की वह अकेली पथिक थी, जिस पर छाया करने वाला कोई परिवार का सदस्य नहीं था। घर के काम उन पर लदे रहते, अतिथि निरन्तर बने रहते। इस वैषम्यपूर्ण वातावरण में कुसुमजी में ज्ञान-प्राप्ति की ललक, पढ़ने-लिखने की अतृप्त लगन हर पल उठती रहती। उनकी छोटी बारह साल

की बेटी अलपना भी ढेर सारी कविताएँ लिखती थी और कुसुमजी रचना के उन पलों में उसके साथ होती थी।

चंडीगढ विश्वविद्यालय से पीएच्·डी·करते दम तक "उसकी पंचवटी" के बाद "उस तक" और "अपनी-अपनी यात्रा" उपन्यास छप चुके थे। "तितलियाँ" टेलीविजन सीरियल के लिए कथानक भी इन्हीं दिनों लिखा जब शोध-कार्य शुरू था। कुछ कर पाने की अदम्य लालसा के कारण उन्होंने अनेक आवाहनों से मुकाबला किया था। "पंचवटी" उपन्यास फिलम में परिवर्तित होकर सजीव बन बैठा। "एक और पंचवटी" का पंजाबी में अनुवाद भी छपवाया गया।

गर्मियों के दिन वह प्रायः मसूरी जाया करती। वहाँ के एकान्त में वह लिखती रहती। "किसी भी साहित्य रचना का सृजन करते समय उसके मन में एक कल्पना का संसार जी उठता है। सारे पात्र अपने आप चलते-फिरते उनके साथ संबंध बनाते हैं। साहित्य-सृजन के समय वह बाहर के संसार से कटकर भीतर का संसार जीने लगती है। पात्रों के बहाने अनेक स्थितियों में अपने आप को दाँव पर लगा पाती है। कभी चोट खाकर लड़खड़ाती है, कभी दर्द होने पर कराहती है, कभी जी खोलकर हँसती है। वह हर चरित्र, घटना-दुर्घटना में ताक-झाँक करती अनुसंधान करती है।"[22] जीवन के सारे अव्यक्त अनुभव "रेखाकृति" नामक उपन्यास में उन्होंने व्यक्त किये हैं। आगे चलकर "विरूपीकरण" काव्यसंग्रह लिखा।

8· <u>विदेशी यात्रा</u>

कुसुम अंसल की जीवन यात्रा अलीगढ़, आगरा, दिल्ली, बम्बई, गोरखपुर से संबंधित रही। देश के बाहर भी उन्होंने कई देशों की यात्राएँ की हैं - "योरोप, अमरीका, जापान, चीन, ऑस्ट्रेलिया, केनिया, इसराईल, रूस, साउथ ईस्ट एशिया, बगदाद, सिंगापुर, बैकांक, मलेशिया, इराक, नेपाल आदि। कुछ यात्राएँ पति के साथ तो कुछ मित्रों के साथ की हैं।"[23] इन यात्रा-वृत्तान्तों पर एक पुस्तक भी यंत्रस्थ है।

9· कुसुम अन्सल का व्यक्तित्व

कुसुमजी का जीवन उनके लिए बीहड और कष्टकर था। रास्ते में पड़े पत्थरों ने भी कभी बैठकर विश्राम करने को नहीं कहा। वह अकेली जीवन पथ पर से गुजर रही थी। बिना प्यार, बिना दुलार। केवल कर्तव्य के बंधन में जुटी थी। बचपन में माँ की मौत हो चुकी थी। पिताजी की छाया तो सिर पर थी पर साथ नहीं था। उसने अकेले बनकर अपना रास्ता तलाश लिया था। उनके भीतर निर्मित कर्तव्य की चिंगारी कभी भी नहीं बुझी। इसी कर्तव्य की चिंगारी ने उसे प्रेरणा दी। उसका पूरा जीवन गतिमान बनाया। जीवन पथ के सभी दुर्गम नाले, पहाड, लांघ कर वह यहाँ तक आ चुकी हैं। अपने अस्तित्व से किसी को ठेंस न पहुँचे यहीं उसका ध्येय था। उसने कभी किसी को भूल से भी कष्ट नहीं दिया है। मानसिक शारीरिक कष्ट परिवार के लिए बिना हिचकिचाहट उठाती रही। बड़े बाप की धनसंपन्न बाप की बेटी होकर भी, प्रतिकुल परिस्थितियों से, विवाहोपरान्त आर्थिक विषमताओं से सदा समझौता करती रही। धन की उपलब्धि ने उसे घमंडी नहीं बनाया है। आज उसके पति के पास कई गाडियाँ हैं, परन्तु वह अपने अतीत को नहीं भूलती है। वह कहती है - "समय बदल गया है, समृद्धि के द्वार खुल गये हैं परन्तु मेरा "स्व" आँखों में बहुत कुछ देखा है और देखे हुए सत्य को भुलाया नहीं जा सकता।"[24] कुसुमजी को ज्योतिष पर विश्वास नहीं था। वह अपने कर्म पर विश्वास रखती थी।

कुसुमजी अपनी मातृभाषा पंजाबी को अनभिज्ञ होने की कमी को अपने में महसूस करती है। "पंजाबी का अपना सशक्त साहित्य है और जिसके प्रति मेरी अनभिज्ञता। जीवन के इस पल में मुझे आभास होने लगा कि मुझे अपने आप को पंजाबी कहने का कोई अधिकार नहीं है। मैं अपनी मातृभाषा से अनजान मात्र एक मिट्टी की पुतली भर हूँ। अपना आप मुझे खोखला-सा लगने लगता।"[25] पंजाबी को-ऑपरेटिव की मीटिंग में उन्होंने हिन्दी हस्ताक्षर लगवाने के बाद महीपसिंह और उप्पलजी ने उन्हें सलाह दी कि "गुरूमुखी आपको सीख लेनी चाहिए जिसे भाषा बोलनी और समझनी आती हो उसके लिए मात्र लिखना इतना कठिन नहीं

होगा।"[26] इस छोटी-सी घटना को सुनते ही कुसुमजी के व्यक्तित्व में एक चैतन्य निर्माण हुआ और उन्होंने अपने लिए अध्यापक की नियुक्ति की और फिर कुसुमजी पंजाबी सीखते समय पहली कक्षा की विद्यार्थिनी बनी थी। चलते-चलते वह अपने लिखे हुए का अनुवाद पंजाबी में करने की योग्यता प्राप्त कर सकी। पंजाबी साहित्य परिवेश में उन्होंने अपना स्थान भी तलाश लिया और विश्वपंजाब कान्फ्रेन्स के आमंत्रण पर बैकांक चली गयी। नये-नये क्षेत्रों में अपना स्थान बनाने में वह अग्रणी रही। इस संगोष्टी में उन्होंने अपना एक पंजाबी भाषा का लेख भी पढ़ा। अपनी मातृभाषा से अनभिज्ञ कुसुमजी ने अपनी पंजाबी भाषा के साहित्य में कैसे प्रवेश किया यह एक प्रशंसनीय बात लगती है। यहाँ कुसुमजी का व्यक्तित्व उर्ध्वगामी और गतिशील लगता है। अपनी कमी को जाँचकर उसे पूरा करने की प्रवृत्ति उनमें लक्षित होती है।

कुसुमजी कर्तव्यदक्ष बहू थी जिसने अपनी सास को बीमारी में जनरल वॉर्ड में रहकर उनकी सेवा की थी। सास कोमा में जा चुकी थी। कुसुमजी इतनी उदार है कि सास के साथ अस्पताल में उनकी सेवा करने के लिए रहती थी। तब एकाएक सामनेवाले मरीज की हालत बीगडी गयी थी। इस समय स्वयं कुसुमजी ने खून दिया था। सेवाभावी प्रवृत्ति की औरत लगती है।

उन्होंने जीवन के हर पड़ाओं पर जीत हासिल की है। शोध-कार्य जैसे गंभीर कार्य में भी उन्होंने सफलता पायी। अभिनय के क्षेत्र में भी सफलता पायी। एक सफल लेखिका के रूप में और पंजाबी सीखने में भी वह सफल हुई। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं रहा जहाँ उन्होंने उस क्षेत्र को आवाहन नहीं दिया। प्रतिकूल परिस्थितियों से टकराते-टकराते यश के हिमाद्री को उन्होंने प्राप्त किया। काम के प्रति लगन, चुनौती देने की प्रवृत्ति, साहस आदि में उन्हें कर्तव्य पथ पर से नहीं हटाया। जब कुसुमजी खाली रहती तब उसे रिक्तता खलने लगती वह एक कर्मयोगी लगती है। उसका व्यक्तित्व उदारता से ओतप्रोत लगता है। स्वयं अमीर होकर उन्होंने गरीबों की नफरत नहीं की है। एक पागल भिखारी के पास टूटा लोटा देखकर उसका मन उदारता से भर आता है और वह उसे अपने कीचन में जाकर एक नया लोटा देती है, परन्तु भिखारी इसे स्वीकार नहीं करता है। उन्हें अपने गुरू के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा थी। पीएच्·डी·की उपाधि प्राप्त होते ही उन्होंने हिन्दी विभाग चंडीगढ़ में जाकर अपने मार्गद्रर्शक यश गुलाटी के चरण छुएँ और गुरू के चरणों पर अपनी डिग्री रख दी।

उन्होंने शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में भी अपने बाबूजी के कदमों पर कदम रखकर कार्य किया। पालम विहार के एक सुंदर से घर में उन्होंने एक स्कूल खोला। उसे लगन से तस्वीर जैसा सजाया, स्कूल खोलने की बाबूजी की इच्छा और भावना उनके साथ थी। बाबूजी के स्मरणार्थ "चिरंजीव भारती" स्कूल खोला। स्कूल नियमों की किताबें उन्होंने पढ़ी। यह शिक्षा व्यवस्था का बोझ अन्सल परिवार ने कुसुमजी पर छोड दिया था। सुशील इस कार्य में उन्हें प्रोत्साहित करते थे और कहते थे, "बस आगे की ओर देखो, पीछे मुडकर नहीं देखना, चल पड़ी हो तो चलती जाओ निरंतर, रूकना भी नहीं।"[27] वह इस स्कूल को शांति निकेतन बनाना चाहती है। बच्चों की ऊँची शिक्षा देने का सपना संजोती है, जिसके लिए अध्यापिकाओं का चयन खुद करती। बच्चों को हर सुविधा को प्राप्त करा देना चाहती है। उन्होंने स्कूल में अभावग्रस्त बच्चों को भी उदारता के साथ प्रवेश दिया। कश्मीर से आये और अब दिल्ली में वरांडेनुमा घर में रहने वाले अभावग्रस्त परिवार के चारों बच्चों को प्रवेश तो दिया, परंतु उस अभावग्रस्त कश्मीरी महिला को स्कूल में नर्स के रूप में भरती करवाया। इसमें अत्युच्च मानवतावादी उदारता के दर्शन तो होते ही हैं और उनकी संवेदनशीलता पर भी प्रकाश पडता है। स्कूल का कायाकल्प हो रहा है। पाल्य विहार, ज्ञानभारती जैसे स्कूल एक के साथ एक आकर लेने लगे। स्कूल का काम करते समय उन पर कुछ आरोप-प्रत्यारोप भी लगवाये गये।

कुसुमजा की असहाय, दुर्बल, पीड़ित, शोषित महिलाओं की पक्षधर हैं। वह पुरूष की तुलना में स्त्री को कम नहीं समझती। वह स्त्री को ही स्त्री की दुश्मन मानती है। उनकी जीवन यात्रा के अनुभव उनकी उपलब्धि है, उनकी रचनात्मक प्रक्रिया का यथार्थ है। अनुभव जन्य अपने इस अपूर्व खजाने को उन्होंने लेखन के माध्यम से अर्जित किया है बाँट लिया है।

उनका व्यक्तित्व गतिशील, उर्ध्वगामी, परिवर्तनशील है। उनका अपनापन तटस्थ है। उन्होंने अपनी जीवन यात्रा में अनेक पड़ाव देखें, अवसर-सुअवसर सभी से वह गुजरती रही फिर भी उन्होंने अपनत्व पर आँच नहीं आने दी। उन्होंने अपने अस्तित्व की रक्षा माँ के अस्तित्व की तरह की। उसे महारानी, बेगमान या

सफल इंडस्ट्रियलिस्ट की बीबी बनने का घमंड नहीं अखरा। "मिसेज अंसल" हो जाना उनकी नियति थी और कुछ नहीं। हिन्दी की लेखिका बनना ही उसकी नियति थी। वह किसी की आत्मदया में नहीं पलती रही। वह प्रकृति के नियमों का पालन करने वाली नारी है। उसने किसी भी प्रकार की विकृति को नहीं स्वीकारा है। उसके पास एक रचनाकार का मस्तिष्क है। वह अपनी रचना को परमात्मा के प्रति की गई स्तुति मानती है। वह केवल ब्रहम को साथ मानती है। वह अहं से परे है। उसके जीवन यात्रा की उदासीनता उसको सत्य की ओर जाने का मार्ग लगता है।

10· कुसुम अंसल का कृतित्व

1· कवयित्री कुसुम अंसल

कुसुम अंसल की कविताएँ एक ऐसे संवेदनशील मन की विवृतियाँ हैं, जिसका केंद्रिय बिंदु सतत तलाश से जुझता रहता है। यह तलाश जीवन की सार्थकता की तलाश है, जिसमें भौतिक तृप्ति या अतृप्ति की संगति बहुत पीछे छूट जाती है क्योंकि हर प्राप्ति जीवन के अभाव को और गहरा जाती है और हर अप्राप्ति संवेदना की अनेक मुंदी-छिपी परतों को भेदती हुई अनुभूति की अतल गहराईयों में प्रवेश पाती रहती है। उनकी कविताएँ मानवीय संबंधों के आत्मीय संदर्भों को केवल उभारती ही नहीं, बल्कि बदलते परिवेश में संबंधों और उनसे जुडी हुई परम्परागत मानसिकता के खोखले और विद्रूप होते चले जाने की नियति को अपनी सम्पूर्ण सहजता और सादगी से उजागर कर देती है।"[28]

कुसुम अंसलजी के "मौन के दो पल" और "धुएं का सच","विरूपीकरण" ये तीन कवितासंग्रह प्रकाशित हैं। अपनी कविता के बारे में कुसुमजी लिखती हैं, "मेरी कविता और कुछ नहीं एक निरन्तर संवाद है अपने से अपने बीच, मन और जीवन के बीच एक भावना को पकड़ पाने का प्रयास है।"[29] अंसलजी एक संवेदनशील कवयित्री है।

"विरूपीकरण" की कविताएँ मानसिकता विशेष की कविताएँ हैं। इनमें एक खोज है अपने विस्तृत "स्व" की, जो निरन्तर चलती रहती है तथा मन का गोपनीय भी है जो सम्मुख आ खड़ा हुआ है।कुछ स्थलोंपर अपने को अपने से अलग करके सारी स्थिति का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।"[30]

2· कहानीकार कुसुम अंसल

एक कहानीलेखिका के रूप में भी कुसुम अंसलजी का स्थान महत्वपूर्ण है। उनके "स्पीड ब्रेकर" और "पते बदलते हैं" ये दो कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। गत कुछ वर्षों से कुसुमजी ने हिन्दी नवकथा लेखन में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। मानवीय यातनाओं एवं विडम्बनाओं को सजग कथाकार के रूप में चित्रित करने वाली कहानी लेखिका के रूप में उसे पहचाना जाता है।

"कुसुम अंसल की कहानियाँ एक ऐसे संसार से पाठकों का परिचय कराती हैं, जो अभी तक हिन्दी में अधिक उद्घाटित नहीं हुआ है। गत तीन चार दशकों में इस देश में उभरे नवधनाढ्य वर्ग के आडम्बर और खोखलेपन को लेखिका ने बड़ी गहराई से अनुभव किया है और उसे अपनी कहानियों में चित्रित किया है।"[31] इनकी कहानियों में जीवन के अछूते पहलू दृश्यमान बन बैठे हैं।

3· कुसुम अंसल का समग्र कृतित्व

उपन्यास	सन
1· उदास आँखें	1975
2· नींव का पत्थर	1976
3· उसकी पंचवटी	1978
4· उस तक	1979
5· अपनी-अपनी यात्रा	1981
6· एक और पंचवटी	1985
7· रेखाकृति	1989

पंजाबी उपन्यास

1· किस पछाता सच

2· राहां की भाल

अंग्रेजी उपन्यास

1. Sing me No songs.

2. Travelling with a sunbeam

कहानी संग्रह

1· स्पीड ब्रेकर

2· पते बदलते हैं

3· इक्तीस कहानियाँ

पंजाबी कहानी संग्रह

1· हनेरे का कारण

अंग्रेजी कहानी संग्रह

1. Matchmaker and other stories.

कविता संग्रह

1· मौन के दो पल

2· धुएं का सच

3· विरूपीकरण

शोध

आधुनिक हिन्दी उपन्यास और महानगरीय बोध

आत्मकथा

जो कहा नहीं गया

कुसुम अंसलजी का यह रचना संसार उसके व्यक्तित्व की बहुमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डालता है। साहित्य के सभी क्षेत्रों में कुसुमजी की लेखनी ने महत्वपूर्ण योगदान निभाया है।

नि ष्क र्ष

कुसुम अंसलजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सोचने के बाद यह स्पष्ट होता है कि आदर्श भारतीय नारी के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है ये सभी गुण उनमें मौजूद हैं। कुसुमजी का व्यक्तित्व और कृतित्व अपनी जीवन यात्रा के विविध मोडों से गुजरता हुआ लक्षित होता है।

परिवर्तित माहौल में बिना हिचकिचाहट खुद को ढालने की प्रवृत्ति, जीवन में विविध समस्याओं के कारण उनके जीवन में उत्पन्न हुई रूकावटें, अभिनय के सच को सकार करने के लिए विविध मोड़ों पर किये गये संघर्ष, विषम परिस्थितियों की टकराहट से वर्तमान स्थिति में प्राप्त वैभव, जीवन के सही अनुभवों को साहित्य के माध्यम से प्रसृत करने की अदम्य ललक, साहित्य सृजन की विधाओं में सत्य अनुभवों की तलाश, शिक्षा संस्थाओं के निर्माण द्वारा समाजकार्य करने की चाह, अपने खालीपन को काटने के लिए विविध प्रयत्नों की तलाश, जीवन की इच्छापूर्ति के लिए जीवन यात्रा के सभी पडावों पर किया गया संघर्ष, हर अनजाने अजनबी क्षेत्रों में प्रवेश करके तीव्र इच्छाशक्ति के बल पर प्राप्त की गयी सफलता, जननी-जन्मभूमि के प्रति अतीव प्रेम, यश के अत्युच्च क्षणों में भी अतीत के सुख-दुःखों से गहरा जुडाव, पति के कार्य बाहुल्य में भी उन्हें प्रोत्साहित करने की वृत्ति, घर की चार दीवारों के बीच विविध बदलावों के बावजूद भी साहित्य निर्मिती की तीव्र लालसा, साहित्य सृजन के पश्चात अपने साहित्य के मूल्यांकन के लिए अनुचित मार्ग का अवलंब न करने की प्रवृत्ति, अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखकर किसी के भी सामने न झुकने की वृत्ति, शोध-कार्य जैसे जटिल काम में प्रविष्ट होकर उज्वल यश की प्राप्ति, समीक्षकों के गुटों से अलग रहकर साहित्य सृजन का अविरत कार्य, अपने अस्तित्व पर आँच न आने के लिए रखी सर्तकता, पूँजीवादी तथा धनिक लोगों में

निवास करने वाली विकृतियों से परे रहने की प्रशंसनीय प्रवृत्ति, अतीव वैभव में अहम् से दूर अत्यन्त उदारतापूर्ण बर्ताव, अतीत को सदा याद रखकर भविष्यत के सपनों को साकार करने के लिए वर्तमान के साथ किया जाने वाला संघर्ष, वैभव की छाया में भी कर्तव्य से दूर न हटने की ललक, अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने की उर्ध्वगामी शक्ति, परिस्थितियों से संघर्ष करते-करते जीवन के इच्छित की प्राप्ति, अपने बाल-बच्चों के विकास के लिए तथा उनके व्यक्तिमत्व विकास के लिए किये गये विविध प्रयत्न इन सभी पहलुओं के दर्शन अन्सल के व्यक्तित्व के माध्यम से होते हैं। एक आदर्श गृहिणी, आदर्श और सफल माता, आदर्श पत्नी, आदर्श बेटी, आदर्श भाभी, आदर्श बहू के रूप में कुसुमजी ने एक आदर्श भारतीय नारी का पार्ट आदा किया है। कुसुमजी का व्यक्तित्व गतिशील, धारावाही, प्रवाही और उदारतापूर्ण मानवता का सागर लगता है। कुसुमजी का व्यक्तित्व संवेदनाओं से ओतप्रोत और दूसरों के दु:ख से दु:खी होने की भावनाओं से प्रशंसनीय बन पडा है। मुझे लगता है कि उपर्युक्त सारी जानकारी कुसुमजी के व्यक्तित्व को हुबहू साकार करने में सक्षम है।

कुसुमजी के साहित्य की भाषा अत्यन्त प्रवाही, शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। कभी-कभी अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी का अच्छा नमूना उनके साहित्य के माध्यम से देखने को मिलता है। कुसुमजी कवयित्री होने के नाते उनके साहित्य की भाषा में काव्य की मधुरता और प्रकृति वर्णन की प्रचुरता देखने को मिलती है। उनके साहित्य की शैली काव्यात्मक और वर्णनात्मक लाती है। उन्होंने स्वयं भोगे हुए कई अनुभवों को उनके साहित्य के द्वारा वाणी मिली है। सम्पन्न स्थितियों के बावजूद भी कुसुमजी की उदासी, घुटन, अलगाव, संत्रास, रिक्तता आदि का वर्णन उनकी कार्यप्रवण मनोवृत्ति को तथा इच्छाशक्ति को योग्य वातावरण न मिलने से उत्पन्न है।

कुसुमजी का पूरा व्यक्तित्व कृतित्वशील, साहसी, अदम्य इच्छाकांक्षी कार्यप्रवण नारी की विजय गाथा लगता है। लगता है कि भविष्यत् में कुसुमजी की साहित्य सृजनता और भी विकसित होकर हिन्दी साहित्य को एक नया योगदान दे सकेगी।

संदर्भ

1· कुसुम अन्सल, "जो कहा नहीं गया' राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र·सं·1996, पृ·18

2· वही, पृ·20

3· वही, पृ·23

4· वही, पृ·25

5· वही, पृ·18

6· वही, पृ·28

7· वही, पृ·21

8· वही, पृ·27

9· वही, पृ·48

10· वही, पृ·56

11· वही, पृ·61

12· वही, पृ·23

13· वही, पृ·76

14· वही, पृ·77

15· वही, पृ·77

16· वही, पृ·77

17· वही, पृ·79

18· वही, पृ·81

19· कुसुम अन्सल के व्यक्तिगत पत्र से उद्धृत।

20· कुसुम अन्सल, "जो कहा नहीं गया" राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र·सं·1996, पृ·84

21· वही, पृ·101

22· वही, पृ·155

23· कुसुम अन्सलजी के दि·9 जनवरी, 1996, के पत्र से उद्धृत।

24· कुसुम अन्सल, "जो कहीं नहीं गया", राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र·सं·1996, पृ·107

25· वही, पृ·133

26· वही, पृ·134

27· वही, पृ·167

28· कुसुम अन्सल, "धुए का सच" अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र·सं·1980, मुखपृष्ठ से उद्धृत।

29· वही, प्राक्कथन से उद्धृत।

30· कुसुम अन्सल, "विरूपीकरण," अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र·सं· 1986 मुखपृष्ठ, आवरण पृष्ठ से उद्धृत।

31· कुसुम अन्सल, "पते बदलते हैं", अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र·सं·1983, मुखपृष्ठ से उद्धृत।